भारतीय ब्राह्मी लिपि (भ्रान्ति निवारण)

- समीक्षाचक्रवर्ती महामहोपदेशक पण्डित मधुसूदन ओझा

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
अध्येता पंडित मधुसूदन ओझा साहित्य
संपादक - विश्व गुरु दिव्य संदेश मासिक शोध पत्रिका
पूर्व प्राचार्य श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर

महाभारत के शान्ति पर्व में लिखा है कि आर्यों की सर्वप्रथम लिपि ब्राह्मी लिपि ही थी, जिससे ब्राह्मी भाषा उत्पन्न हुई। इस प्रकार ये चारों वर्ण, जिनकी भाषा ब्राह्मी थी, जो ब्रह्मा द्वारा सर्वप्रथम बनाई गई थी, किन्तु वह लोभ के कारण अज्ञानता को प्राप्त हो गई अथवा लुप्त हो गई। यह ब्राह्मी भाषा संस्कृत भाषा है, इसे कुछ थोड़े से ब्राह्मण लोग ही जानते हैं, सभी लोग नहीं जानते, तथा ब्राह्मी लिपि तो आजकल लिखी ही नहीं जाती है।

(वैदिक मंत्रों के निर्माणकाल में लिपि का सामान्यतः अभाव था, इस मत के खण्डन के लिए श्रुति शब्द के व्यवहार के मौलिक अर्थ का प्रस्तुतीकरण द्रष्टव्य है।)

ऋग्वेदश्रुति-निर्माण के समय कोई लिपि नहीं थी, इसलिए मात्र कण्ठ से उच्चारण किये हुये को कानों से सुने हुए होने के कारण ही वेदों को श्रुति कहा जाता है।

इस प्रकार कुछ पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं, जो मात्र कल्पना-प्रिय हैं और भारतीय वैदिक ज्ञान के रहस्य से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं।

प्राचीनकाल से ही भारतीय विद्वानों द्वारा यह ''श्रुति' शब्द जिस अर्थ में निर्धारित किया गया है, मैं उस संकेत के संबंध में कहता हूँ।

सत्य धर्मों के ज्ञान में जो हेतु हैं, वे प्रमाण हैं और ये प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान और शास्त्र तीन प्रकार के हैं।

ज्ञान के विषय में तीन कारण प्रमुख माने गये हैं। वे हैं-दृष्टि, श्रुति और स्मृति अथवा निबन्ध। नेत्रों से देखा गया तथ्य प्रत्यक्ष प्रमाण है और श्रुति तथा स्मृति प्रमाण शास्त्रज्ञान है।

नेत्रों से केवल सत्य ही धारण किया जा सकता है, क्योंकि नेत्र केवल प्रत्यक्ष, दोषरहित और आडम्बर-रहित तथ्य को ही स्वीकार करते हैं। इसलिए यह प्रत्यक्ष प्रमाण ही एक मात्र प्रमुख प्रमाण है, अन्य प्रमाणों को भी इसी प्रमाण की आवश्यकता होती है।

मीमांसा से सिद्ध होता है कि ''प्रत्यक्षद्रष्टा के वचन में किसी अन्य प्रामाणिक वचन की आवश्यकता नहीं होती।'' द्रष्टा का वचन भी श्रुति है। वेद प्रत्यक्ष शास्त्र है अर्थात् प्रत्यक्ष मंत्रद्रष्टा के वचन हैं।

द्रष्टा के वाक्य ही श्रुति (श्रवण योग्य) हैं। इस आधार पर श्रुति के मूल में दृष्टि ही प्रमुख है। द्रष्टा जो कुछ प्रत्यक्ष देखता है, श्रोता उसी प्रत्यक्ष-द्रष्टा के मुख से श्रवण करता है। अतः वह श्रुति-ज्ञान भी मूलतः दृष्ट-ज्ञान ही है।

दृष्टि स्वतः प्रमाण है (वह वस्तुस्थिति को प्रत्यक्ष देखती है), अतः द्रष्टा के वाक्य भी स्वतः प्रमाण हैं, जिसे अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। द्रष्टा का ज्ञान सर्वप्रथम अथवा मूल ज्ञान होता है, न कि किसी अन्य ज्ञान के आधार पर प्राप्त किया गया ज्ञान होता है।

श्रोता का वाक्य ''स्मृति'' है, इस नियम के आधार पर स्मृति में वक्ता अपने द्वारा दृष्ट ज्ञान को नहीं कहता, अपितु दूसरे के द्वारा कथित वाक्य का अपनी वाणी के द्वारा अनुसरण करता है।

स्मृति केवल अनुमान मात्र है, जिसमें लिङ्ग ज्ञान से ज्ञान प्राप्त होता है, (यथा-धुएँ से पर्वत पर अग्नि का अनुमान होता है) यहाँ, वक्ता स्वयं दृष्ट-ज्ञान से युक्त नहीं है, अपितु आप्त पुरुषों के वचन का श्रवण करने वाला है।

दृष्टि ज्ञान रखने वाले पुरुष के विश्वास पर जो हमारा विश्वास होता है, वह वाक्य परतः प्रमाण है और वाक्यान्तर की अपेक्षा रखता है। ऐसा व्यक्ति जब तक द्रष्टा के वाक्य को प्रधानता से ग्रहण नहीं करता, तब तक वह अपने वाक्य को प्रमाणित नहीं कर सकता।

इस प्रकार शास्त्र दो प्रकार के हैं -स्वतः प्रमाण और परतः प्रमाण। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई तीसरा शास्त्र नहीं है।

परतः प्रमाण शास्त्र में जहाँ कोई द्वैविध्य आ जाता है, तो ऐसे विवादग्रस्त स्थान पर तीसरे अनुमान प्रमाण की प्रवृत्ति होती है।

अनुमान प्रमाण से दोनों विरुद्ध वाणियों से पृथक् तात्पर्य निकलता हो, तो उसमें सत्य का ग्रहण किया जाता है, वही निबन्ध समझना चाहिये।

यदि निबन्ध को शास्त्र मानते हैं, तो उसका शास्त्रत्व अनुमान के द्वारा शास्त्र के अनुबन्ध से जाना जाता है। और वह उपचार से (अनुमान) तर्कज्ञान है।

इस प्रकार सम्पूर्ण वाङ्मय अथवा शास्त्र इन्हीं तीन प्रमाणों के आधार पर स्थित है। इन तीनों प्रमाणों के अतिरिक्त यदि कोई प्रमाण है, तो वह अनर्गल प्रलाप (तथ्यहीन कथन) ही होगा।

केवल भारतवर्ष में ही ये तीन प्रमाण उचित माने गये हों, ऐसी बात नहीं है अपितु अन्य समस्त देशों में और समस्त भाषाओं में इनको उचित माना गया है।

किन्तु भारतवर्ष में ही इस विषय पर गहन विचार हुआ है, अनुसन्धान हुआ है इसलिए मात्र प्रतीक रूप से इनके लिए श्रुति, स्मृति इत्यादि शब्द निर्धारित कर दिये गये हैं।

इस प्रकार जो प्राचीन विद्वानों के इन संकेतों अथवा प्रतीकात्मक शब्दों के विषय में कुछ नहीं जानते हैं, वे श्रुति शब्द के भ्रामक अर्थ की कल्पना करके दूसरों को भी भ्रम में डालते हैं।

इस भारतीय विद्या के वास्तविक रहस्यज्ञान को बिना समझे भारतीय शास्त्रों में प्रयुक्त शब्दों का विश्लेषण इसके प्रति घोर अन्याय करना है ।

यह श्रुति शब्द मंत्रसंहिताओं में मंत्र के अर्थ में नहीं बताया गया है, अपितु लिपिकाल में मंत्र और ब्राह्मण दोनों के लिए श्रुति शब्द समान रूप से प्रयुक्त हुआ है ।

श्रवण से यदि श्रुति शब्द निष्पन्न होता, तो ऋग्वेद में भी अवश्य श्रुति शब्द का उल्लेख किया गया होता, परन्तु वहाँ लिपि शब्द के समान इसका उल्लेख नहीं है।

यदि श्रवणपरम्परा से ही श्रुति शब्द निष्पन्न हुआ होता, तो लिपिकाल में विरचित ब्राह्मण ग्रन्थों में तो श्रुति शब्द का प्रयोग कहीं अवश्य होता ।

मंत्रनिर्माणकाल में लिपि की विद्यमानता के लिए पहला वैदिक प्रमाण

कुछ लोगों का कहना है कि यदि वैदिक काल में लिपि रही होती, तो अवश्य ही वेदों में कहीं न कहीं लेखनसामग्री यथा लेखनी, स्याही इत्यादि का भी उल्लेख किया गया होता ।

इस संबंध में हमारा कहना है कि वेदों में कहीं लिपि का कोई प्रसंग नहीं आया, इसलिए इस सामग्री का वहाँ कोई उल्लेख नहीं हुआ। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि लेखनसामग्री के उल्लेख न होने के कारण ही वहाँ लिपि का अभाव था ।

ऐसा कहीं भी दिखाई नहीं देता है कि श्रुति शब्द का किसी मंत्र में मंत्रपरक उल्लेख हुआ हो, और यदि मंत्र में श्रुति शब्द को मंत्रपरक मानते हैं, तो यहाँ भी मानना चाहिये ।

अथवा वेदों में लेखन के अर्थ को प्रकट करने वाले शब्दों की विद्यमानता देखी भी गयी है तथा लेखनी शब्द से लिपि की सत्ता का ज्ञान भी स्वतः हो सकता है।

यजुर्वेद संहिता के पन्द्रहवें अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि 'क्षुर' अर्थात् लोहनिर्मित लेखनी से प्रकाशमान (पत्रोल्लिखित) छन्द है। (इस प्रकार क्षुर शब्द धातु की लेखनी के लिए प्रयुक्त हुआ है) अतः धातु की लेखनी से लिखना स्पष्ट प्रतीत होता है ।

यजुर्वेद में लिखा है-''अक्षरों का संग्रह वेद है, शब्दसमूह वेद है, वाक्यसमूह वेद है, क्योंकि यजुर्वेद में लिखा है- क्षुर से प्रकाशमान ही छन्द है। (यजु. 15/4)

यजुर्वेद की ही किसी अन्य शाखा में तो इस प्रकार लिखा है - क्षुर (लेखनी) वेद है, भ्रज ही छन्द है। इस प्रकार लेखनी और पत्र के संबंध में पृथक रूप से लिखा है। यहाँ भी अक्षर और पद के साहचर्यवर्णन से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में लोह-निर्मित लेखनी को ही 'क्षुर' कहा जाता होगा। इस प्रकार लोह-निर्मित लेखनी से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में सूक्ष्म खुदाई की विधि से सुई की नोंक के समान सूक्ष्म आकृति के अक्षरों की लिपि की सत्ता की संभावना हो सकती है। ''भ्रज'' शब्द से तात्पर्य पत्र पर लिखी हुई प्रकाशमान वाणी ही है।

जिस प्रकार वर्णों से अक्षरपंक्ति होती है, पदों से पदपंक्ति और वाक्यों का समूह विष्टारपंक्ति है, उसी प्रकार क्षुर से प्रकाशमान तो लिपिकृत ही हो सकता है ।

क्षुर निर्मित लेखनी से यदि कुछ लिखा गया तो वह अवश्य ही दिखायी देना चाहिए। वही लिपि है जो मूलतः वाणी है, वही छन्द है तथा उसे ही क्षुरभ्रज नाम से कहा गया है।

सारा वाङ्मय छन्द है। अक्षर, पद और वाक्य के साहचर्य से सम्पूर्ण वाङ्मय ही छन्द है। अक्षर से तात्पर्य लिखने से ही है और कोई अर्थ यहाँ संगत नहीं होता है ।

मंत्रनिर्माण-काल में लिपि की सत्ता में द्वितीय वैदिक प्रमाण

वैदिक काल में भी लिपि थी, इसके लिए वेद में ही प्रमाण मिलता है। जैसा कि विद्यासूक्त में बृहस्पति ने वाणी का दर्शन किया है, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

जैसा कि ऋग्वेद संहिता में लिखा है एक तो वाणी को देखता हुआ भी अज्ञानतावश नहीं देखता है और दूसरा इस वाणी को सुन कर भी नहीं सुनता है। वह वाणी अपने ज्ञानरूप को स्वयं किसी के पास इस प्रकार प्रकट करती है, जैसे पति के सुख के लिए सुन्दर स्त्री अपना सुन्दर रूप पति के सामने स्वयं प्रकट करती है।

उच्चरित वाणी का जिस प्रकार श्रवण होता है, उसी प्रकार ग्रन्थलिखित वाणी का अर्थज्ञान के लिए दर्शन होता है ।

आकृति के बिना वाणी का कहीं दर्शन ही नहीं हो सकता । अतः उस काल में वाणी की मूर्तिरूपी लिपि अवश्य ही विद्यमान थी ।

लिपि-संकेत को न जानने वाला उसको देख कर भी उसे वाणी के संकेत के रूप में नहीं देख सकता और अर्थसंकेत को न जानने वाला सुनकर भी नहीं सुनता ।

मन्त्रनिर्माण काल में लिपि की सत्ता में तृतीय वैदिक प्रमाण

और भी, प्राचीन देवकाल में किसी भी दैवी लिपि की विद्यमानता होने से ही मंत्रनिर्माण करने वालों के आचरण का हमें ज्ञान होता है ।

प्राचीन काल में कुत्सनरेश गन्धर्व एक बार दैत्यों द्वारा राज्य छीन जाने पर अत्यन्त विकल हो गया। तब चिन्ताग्रस्त गन्धर्वराज को घोर प्रगाथ ने इस प्रकार कहा ।

*घोर प्रगाथ कहते हैं- हे मित्रो ! तुम किसी अन्य देव की स्तुति मत करो। किसी दूसरे देव की स्तुति करके दुःखी मत होओ। सोम रस के सवन-याग में बलशाली इन्द्र की एक साथ मिलकर स्तुति करो। इन्द्र के स्तोत्रों को बार-बार बोलो।

जो शत्रुओं की नगरी के दुर्गों का विध्वंसक इन्द्र है, उसके लिए गायत्री छन्द में बनी हुई स्तुति गाओ। जिन स्तुतियों से प्रेरित होकर इन्द्र कण्वपुत्रों के यज्ञ के आसन के पास जावे तथा हाथ में वज्रधारण करके शत्रु के नगरों को तोड़े।

इस प्रकार आदेश प्राप्त कुत्स ने इन्द्र के पास जाकर इन्द्र के मित्र कण्वपुत्रों द्वारा भेजे गये आह्वानार्थ भद्रसूक्त निवेदित कर दिये।

हे इन्द्र ! आओ, हम तुम्हारे उत्साहवर्धक स्तोत्रों का गान करेंगे, जिनके द्वारा यहाँ यश की इच्छा करने वाले अपना कल्याण करना चाहते हैं। इन्द्र के द्वारा प्रदत्त धन निश्चित रूप से कल्याणकारी हैं।

हे इन्द्र ! ये प्रजायें स्तुति करती हैं। अपनी रक्षा के लिए आपको अनेक प्रकार से बुलाती हैं, तब भी प्रतिदिन हमारी स्तुति ही आपकी महिमा को बढ़ाने वाली हो।

हे इन्द्र ! आप आओ और हमें इच्छित धन देकर आनन्दित करो। श्रेष्ठ पेय पदार्थ सोम रस से आप हमारे विशाल हृदयों को परिपूर्ण कर दें।

हे इन्द्र ! आप अपनी रश्मियों के माध्यम से मुझ कण्व की स्तुति को ग्रहण करने के लिये आयें। हे द्युलोकवासी इन्द्र, आप मुझ कण्व को प्रेरित करें तथा आप वापस द्युलोक को लौट जायें।

उस काल में इन कण्वों का स्वर्गगमन नहीं सुना गया। भारत-भूमि पर रहने वाले इन कण्वों द्वारा बिना लिखे यह आह्वान किया जाना सम्भव नहीं था।

इसी कारण इन कण्वों ने अवश्य ही इन सूक्तों को लिख कर कुत्सराज के हाथों इन्द्रागमन के लिए भेजा।

इसलिए हम मानते हैं कि वैदिक मंत्रों के निर्माण-काल से भी पूर्वकाल में कुशल विद्वानों द्वारा उद्भावित लिपि का प्रचार था।

मंत्रनिर्माण-काल में लिपि की विद्यमानता में चतुर्थ प्रमाण

पश्चिम भारत में ऋजाश्व नाम का कोई ऋषि था। जरदस्त्र नाम का उसका दौहित्र था, वह ब्राह्मणों से द्वेष रखता था।

ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण उसने ब्राह्मणों से सम्बद्ध ब्राह्मी लिपि को छोड़ कर, विपरीत (उल्टे) क्रम से लिखी जाने वाली खरोष्ठी नाम की लिपि कल्पित की।

ब्राह्मी लिपि बाँई ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती है, जबकि खरोष्ठी लिपि दाहिनी ओर से बांई ओर लिखी गई। यह लिपि शाकद्वीप तथा अन्य देशों में प्रचलित हुई।

इस खरोष्ठी लिपि के विकार से अनेक लिपियाँ उत्पन्न हुई। जरदस्त्र के अनुयायी लोगों का आचरण लिपि के समान ही विपरीत था। अतः विपरीत आचरण के कारण वे लोग ''मग'' कहलाये।

शाकद्वीप के रहने वाले मग जाति के लोग यहाँ के पणियों के साथ भारतवर्ष आये और ''कीकट देश'' में निवास करने लगे। इसीलिए वह स्थान ''मगध'' कहलाया।

उन्हीं मग जाति के लोगों के साहचर्य से मगध में भी खरोष्ठी लिपि व्यवहार में आने लगी। वहाँ पहले से ब्राह्मी लिपि चलती थी। इस प्रकार वहाँ दोनों प्रकार की लिपि का प्रचार हुआ ।

ब्राह्मी तथा खरोष्ठी दोनों ही लिपियों में अनेक प्रकार की परस्पर विकृतियाँ आ गयीं। ब्राह्मी लिपि भी विकारस्वरूप दाहिनी ओर से बांई ओर तथा खरोष्ठी भी बांई ओर से दाहिनी ओर लिखी जाने लगी ।

प्राचीनकाल में मगध के पाटलिपुत्र नगर में अशोक सम्राट् हुए, जिन्होंने ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों ही लिपियों का अपने राज्य में प्रचलन कराया ।

इस प्रकार बाँई ओर से चलने वाली तथा दाहिनी ओर से चलने वाली दोनों ही लिपियाँ लोगों में आज तक प्रायः सभी स्थानों पर देखी जाती हैं ।

बाँई ओर चलने वाली लिपि का जन्मदाता जरदस्त्र था, ब्राह्मी लिपि के विरोध से इसने इस लिपि में विपरीत क्रम प्रारम्भ किया ।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है, कि जरदस्त्र के जन्म से पूर्व प्राचीन काल से ही सर्वत्र ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी ।

मन्त्रनिर्माणकाल में लिपि की सत्ता में पाँचवाँ प्रमाण

इन वेदों की रचना सभ्यता से परिपूर्ण एवं परिपक्कावस्था में हुई थी। वेदों की वैज्ञानिकता से वेदों के काल की सभ्यता के मूल का स्पष्टीकरण होता है ।

वेदों में वर्णित राजा और प्रजा के विभाग, सामाजिकता, धर्म, नीति तथा कार्य-अकार्य विभाग से उस काल की सभ्यता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं ।

लाखों वर्ष पहले अनादि काल में अनेक शास्त्रों के निर्माण के पश्चात् ही इन वेदों का अवतरण हुआ ।

वेदों में अनेक बार वेदों से पूर्वकाल के साध्य देव, पूर्ववैदिक धर्म, पूर्वजों की गाथाएँ, पूर्व वैदिक काल के आख्यान इत्यादि का वर्णन मिलता है ।

इसलिए इन वेदग्रन्थों से भी प्राचीन काल में हुई उन्नति और अवनति के पर्याय विचारों की धारा लोक में जानी जाती है।

इससे स्पष्ट है कि वेदों के पहले भी अनेक प्रकार की विधायें तथा अनेक प्रकार की भाषायें थीं, जो अनेक लिपियों से उत्पन्न हुई होगी और लुप्त हो गई, ऐसा सम्भव है ।

प्रकृतिक्रम को न जानने वाले और छः हजार वर्ष मात्र के समय को देखने वाले लोग काल-क्रम से विलुप्त हुए अर्थो को उपलब्ध न होने से जानते नहीं हैं ।

यह नितान्त सत्य है कि जितना भी वाड्मय आज उपलब्ध है, उनमें सर्वाधिक प्राचीन साहित्य वेद ही है ।

इसलिए हम कहते हैं, कि यदि वैदिक काल से पूर्व भी भाषा, लिपि और विद्या प्रचलित थी, तो अवश्य ही वेदों के समय में भी यह विद्यमान थी।

मन्त्रनिर्माणकाल में लिपि की सत्ता में छठा प्रमाण

निरुक्त में महर्षि यास्क ने भी कहा है - ''प्राचीन धर्मों को देख कर ही ऋषियों ने प्रवचन किया है। मंत्रग्रहण में समर्थ उन ऋषियों ने सुन कर ही इस ग्रन्थ की रचना की है।

बिल्म विभिन्न खण्ड का होता है। इस बिल्म को ग्रहण करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। अतः लिपि के बिना बिल्म के विभिन्न खण्डों को समझना संभव नहीं है ।

मन्त्रनिर्माण काल में लिपि की सत्ता में सातवाँ प्रमाण

कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने हिमालय के बदरीवन में निवास करते हुए मंत्रों का संग्रह करके वेदों का विभाजन करते हुए संहिताओं की रचना की ।

लिपि के बिना एक ही व्यक्ति के द्वारा उन मंत्रों का संकलन और अनेक संहिताओं की रचना करना संभव नहीं हो सकता ।

मन्त्रनिर्माण काल में लिपि की सत्ता में आठवाँ प्रमाण

दुस्साहसी, अदूरदर्शी तथा विचार-शक्ति से हीन लोग मगधराज अशोक के काल से पहले लिपि की सत्ता ही नहीं मानते हैं । कष्ट की बात है कि मगधराज अशोक मात्र बाईस सौ वर्ष पूर्व हुए, जबकि भगवान् राम पांच हजार वर्ष से भी पहले हुए थे । भगवान् राम के समय भी लिपि थी, क्योंकि उस काल में भी भक्त हनुमान् ने जानकी को रामनामांकित अंगूठी दिखाई थी ।

वाल्मीकि रामायण में लिखा है - हे महाभागे ! मैं प्रज्ञासम्पन्न भगवान् श्री राम का दूत वानर हूँ। हे देवी ! यह राम का नाम लिखी अंगूठी देखो ।

वे अदूरदर्शी लोग धन्य हैं, जो चीनी परिव्राजक इत्सिंग के वचनों को तो प्रामाणिक मानते हैं, परन्तु भारतीय विद्वानों और भारतीय शास्त्रों को प्रमाण नहीं कहते ।

मंत्रनिर्माण-काल में विद्यमान लिपि का ब्राह्मी लिपि ही होना

इस प्रकार इन अनेक कारणों से स्पष्ट है, कि वेदकाल में लिपि विद्यमान थी। वह लिपि अवश्य ही ब्राह्मी, दैवी अथवा किसी अन्य नाम से प्रचलित थी।